पुस्तक परिचय

द्वन्द्व से शिक्षा

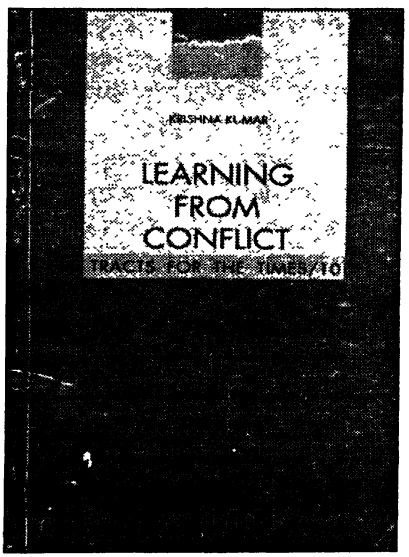

लर्निंग फ्रॉम कॉन्फलिक्ट; लेखकः कृष्ण कुमार; प्रकाशकः ओरिएन्ट लोंगमेन; मूल्यः 50 रुपए; पृष्ठः 81

'शिक्षण में सामाजिक द्वन्द्वों का भरसक उपयोग करना चाहिए, उनसे बचना नहीं चाहिए। द्वन्द्वों को बच्चों से छुपाने से हम उन्हें एक जीवंत और सार्थक शैक्षणिक सामग्री से वंचित रखते हैं। बच्चे इन द्वन्द्वों के प्रति सचेत होते हैं और उसके ज़रिए अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करते हैं।'

● **नूतन झा**

कृष्ण कुमार ने यह किताब भारत वर्ष में स्कूली शिक्षा के ऊपर लिखी है। वास्तव में आधुनिक काल में तथा एक जनतांत्रिक समाज व्यवस्था में शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है। क्योंकि आधुनिक जगत में प्रवेश करने के लिए शिक्षा को एक माध्यम के रूप में, पूंजी के रूप में देखा जा सकता है। इसके साथ ही शिक्षा को सर्वव्यापी बनाना जनतंत्र का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। इसलिए देश में शिक्षा व्यवस्था का वास्तविक

* यह किताब 'ट्रेक्ट्स फॉर द टाइम्स' की दसवीं कड़ी है। यह ट्रेक्ट ओरिएन्ट लोंगमेन द्वारा प्रकाशित उन किताबों की श्रृंखला है जो उन्होंने देश के विभिन्न ज्वलंत प्रश्नों पर छापी हैं।

स्वरूप, स्कूल की कक्षाएं, उनका पाठ्यक्रम, निश्चित रूप से सबकी उत्सुकता का विषय है। और इस परिप्रेक्ष्य में यह किताब अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। कृष्ण कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा शास्त्र के प्रोफेसर हैं और इस विषय पर बहुत पहले से लिखते रहे हैं।

जिस शैली में, जिन उदाहरणों के साथ और समाज के प्रति जिस निष्ठा के साथ यह किताब लिखी गई है, एक संवेदनशील पाठक को यह झकझोरती है। इस किताब की सफलता का प्रमाण है कि यह प्रश्न पर गहराई से विचार करने और प्रश्नों को उठाने की इच्छा भी जगाती है। लेकिन इन प्रश्नों पर आने से पहले इस पतली, तार्किक और लयबद्ध किताब की विषयवस्तु पर एक नज़र डालना आवश्यक है।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान भारत वर्ष में सामूहिक संघर्ष के माध्यम से एक प्रगतिशील जन जागृति हो रही थी – एक नई शिक्षा, नया ज्ञान भारतीय समाज प्राप्त कर रहा था। स्कूल शिक्षा और वृहत्तर सामाजिक व्यवस्था के बीच एक ऐसी अर्थपूर्ण कड़ी बन रही थी जो वास्तविक मुक्ति की, राष्ट्रीयता की, एकता की संदेशवाहक थी। पर शिक्षा के माध्यम से भारतीय समाज का उभरता एकबद्ध और प्रगतिशील स्वरूप निश्चित रूप से उपनिवेशवाद के हित में न था और यही वजह थी कि उपनिवेशवादियों ने पूरी शिक्षा व्यवस्था पर अपना प्रभाव कायम कर उसे एक बहुत ही संकीर्ण रूप देने का अभियान चलाया। उनकी इस नीति ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर इतना घातक प्रभाव डाला कि स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद भी इसे भुलाया नहीं जा सका। शीघ्र ही गांधी, टैगोर, गिजुभाई और कृष्णमूर्ति के शिक्षा दर्शन के मानवीय और प्रगतिशील स्वरूप को भुलाया जाने लगा। अपने चारों तरफ के समाज की वास्तविक सच्चाईयों के प्रति बच्चों के मन में निरपेक्ष भावना उत्पन्न करना पाठ्यक्रम का मूल सिद्धांत बनता गया। और सत्तर तथा अस्सी के दशक तक आते-आते तो देश में केन्द्रीकरण की ऐसी हवा चली कि सभी स्थानीय और क्षेत्रीय सामर्थ्यों को नज़रअंदाज़ कर दरकिनार कर दिया गया। यही नहीं शिक्षा को एक राष्ट्रीय स्वरूप देने के नाम पर उसका अधिक-से-अधिक यान्त्रीकरण किया जाने लगा। पहले जहां स्कूल की कक्षाएं वास्तविक सामाजिक परिवेश से अलग-थलग हो गई थीं, उसी क्रम में वे अब बाल जगत के साथ भी अपने सारे सामंजस्य खोती जा रही हैं।

द्वन्द्व से शिक्षा

इस परिप्रेक्ष्य में कृष्ण कुमार ने वर्तमान स्कूल पाठ्यक्रमों में इतिहास,

विज्ञान और भाषा पर चर्चा करते हुए एक गहरा और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अपने इस अध्ययन की शुरुआत उन्होंने सामाजिक अंतर्द्वन्द्वों से की है। हमारा वयस्क समाज इन अंतर्द्वन्द्वों से बच्चों को भरसक सुरक्षित और दूर रखने की कोशिश करता है। कृष्ण कुमार का कहना है कि शिक्षण में सामाजिक द्वन्द्वों का भरसक उपयोग करना चाहिए, उनसे बचना नहीं चाहिए। द्वन्द्वों को बच्चों से छुपाने से हम उन्हें एक जीवंत और सार्थक शैक्षणिक सामग्री से वंचित करते हैं। बच्चे इन द्वन्द्वों के प्रति सचेत होते हैं और उसके ज़रिए अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करते हैं। इसे समझाने के लिए किताब में कई सटीक उदाहरण भी लिए गए हैं। जैसे दिल्ली में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए भयानक दंगों के बाद ज़बर्दस्ती बनाए सन्नाटे में, स्कूली बच्चों के मन में उफनते प्रश्नों को दबाने, नज़रअंदाज़ करने के सरकारी अंदाज़ का उदाहरण। कक्षा आठ की 'एन.सी.ई.आर.टी. की आधुनिक भारत के इतिहास' की किताब में गांधी जी की हत्या के अपर्याप्त विवरण के आधार पर उठ सकने वाले बहुत सारे प्रश्नों को यूं ही छोड़ देने का उदाहरण। *(देखिए द्वन्द्व की प्रस्तुति.... पृष्ठ 91 पर)* और कृष्ण कुमार बिल्कुल सही फरमाते हैं कि अपने प्रश्नों का सही और स्पष्ट उत्तर न मिलने पर बच्चे जब आसपास के स्रोतों का सहारा लेने जाते हैं तो संभव है कि उन्हें उसकी विकृत छवि मिले। और इस तरह वैज्ञानिक और आधुनिक शिक्षा की दावेदार हमारी शिक्षा व्यवस्था कभी-कभी इतना निरपेक्ष, इतना असंवेदनशील माहौल बना डालती है कि ऐसे माहौल में कभी सिख विरोधी दंगे, तो कभी अयोध्या कांड जैसी घटनाएं घटनी संभव हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त बड़े हो रहे बालक-बालिका इन अंतर्द्वन्द्वों को नज़रअंदाज करके नहीं, बल्कि उन्हें गहराई से समझ कर ही भविष्य में एक सुलझा इंसान बन सकते हैं।

इतिहास में क्रम.....

दूसरे अध्याय में कृष्ण कुमार ने स्कूल के पाठ्यक्रमों में इतिहास के विषय को लिया है। आज़ादी के बाद, विशेष रूप से साठ के दशक से, स्कूलों में इतिहास के पाठ्यक्रम को राष्ट्रनिर्माण के एक प्रमुख ज़रिए के रूप में देखा गया है। परन्तु कृष्ण कुमार इस प्रयास की दो त्रुटियों की तरफ इंगित करते हैं। पहला कि पाठ्यक्रमों में प्राचीनकाल से आज़ादी प्राप्ति तक के इतिहास को तिथिक्रम के अनुसार निरन्तर क्रम में रखा गया है। इतिहास में यह निरन्तरता और भारत को प्राचीनकाल से एक राष्ट्र के रूप में रखने की कोशिश इतिहास में आने वाले किसी अंतराल

को परिदर्शित होने ही नहीं देती। इसी प्रकार उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के माध्यम से जो राष्ट्र उभरा उसका सही परिचय बच्चों को नहीं मिल पाता। दूसरा, कृष्ण कुमार कहते हैं कि पूरे इतिहास को पाठ्यक्रम में डाल देने की नीति के कारण स्वाधीनता संग्राम के हिस्से को बहुत कम स्थान मिल पाता है। फलतः वह चंद नेताओं की जीवनी या इतिहास की घटनाओं के क्रम में एक और घटना के रूप में ही एक छोटा-सा हिस्सा बन कर रह जाता है। फलतः राष्ट्र निर्माण में जिस हद तक सहायक होना चाहिए वह नहीं हो पाता।

इतिहास पाठ्यक्रम को लेकर कृष्ण कुमार ने बहुत ही अहम सवालों को उठाया है जिस सब का ज़िक्र इस लेख में तो करना मुश्किल है, पर इतिहास अध्ययन को अधिक-से-अधिक रचनात्मकता प्रदान करने की दिशा में उनके सुझाव की थोड़ी चर्चा यहां की जा सकती है।

पहले तो लेखक ने यूरोप के कुछ देशों के इतिहास के पाठ्यक्रमों का उदाहरण लिया है। इनमें प्राचीन इतिहास को प्राथमिकता के आधार पर एवं घटनाओं का चुनाव करके प्रस्तुत किया गया है। पुनर्जागरण के बाद के इतिहास को ही तिथिक्रम के अनुसार विस्तृत रूप में रखा गया है ताकि बच्चे वर्तमान के साथ इतिहास की प्रासंगिकता को देख पाएं और उसका सही लाभ उठा पाएं।

दूसरा, उन्होंने इतिहास की किताबों की रचना करने के हमारे परंपरागत ढंग यानी कम स्थान में अधिक ठूंस देने को व्यर्थ बताया है। इससे एक तो किताबें सघन और नीरस हो जाती हैं, वहीं दूसरी ओर वर्तमान परीक्षा व्यवस्था में सिवाय उसे कंठस्थ करने के और कोई रास्ता नहीं बचता। यशपाल कमेटी में ज़रूर इस अमानवीय बोझ की निन्दा की गई है, परन्तु सरकारी रवैया बिल्कुल उदासीन है। कृष्ण कुमार का सुझाव है कि भूतकाल की 'समूची' कहानी को समेटकर बच्चों के मस्तिष्क में 'डाल' देने के इस दुरूह प्रयास के बदले अगर पाठ्यक्रमों की रचना में कुछ ऐसा विकल्प सोचा जाए, जिसमें बच्चे भी अपने ऐतिहासिक चिन्तन को व्यवहार में ला सकें तो कुछ सकारात्मक नतीजा सामने आ सकता है। अगर बच्चों को इतिहास की जानकारी के प्राथमिक स्रोतों से परिचित कराया जाए, कुछ घटनाओं की गहराई में जाकर अपने प्रश्नों का हल ढूंढने की प्रवृत्ति जगाई जाए, इतिहास लेखन – जो वास्तव में काल की तहों में जाकर विवरण और विश्लेषण के आधार पर तथ्यों को सामने लाने की एक कला है – को बच्चों के करीब लाया जाए तो बच्चे उसको अपने जीवन के संग जोड़ सकेंगे

और उनमें उसके प्रति सम्मान भाव बढ़ेगा। तब उसे बदल डालने की नहीं वरन् उसे समझने और उसके साथ जीने की प्रवृत्ति जन्मेगी।

पर्यावरण अध्ययन बनाम विज्ञान

इतिहास के बाद कृष्ण कुमार ने स्कूलों में विज्ञान के अध्ययन पर चर्चा की है। उनका मानना है कि प्राथमिक स्कूल विज्ञान को 'पर्यावरण अध्ययन' के रूप में रखने और माध्यमिक स्तर के विज्ञान पाठ्यक्रम में 'पर्यावरण के प्रति सजगता जगाने' का प्रयास वास्तव में विज्ञान शिक्षा के प्रारंभिक स्वरूप या चरित्र को नहीं बदल पाया है। बल्कि विज्ञान अध्ययन के अंतर्गत जो वर्तमान मूल्य बोध है वह अभी भी प्रकृति के ऊपर नियंत्रण, यहां तक कि विजय हासिल करने की प्रवृत्ति को ही जगाता है। पर दूसरी ओर अल्पवयस्क बच्चों के पाठ्यक्रम में 'पर्यावरण अध्ययन' को डालकर समाज को प्रकृति के विनाश के प्रति सचेतन बनाने का प्रयास बहुत ही असंगत स्थिति पैदा करता है। यही नहीं पर्यावरण अध्ययन के साथ स्कूल पाठ्यक्रम के अन्य विषयों का संबंध भी सामंजस्यपूर्ण नहीं है, क्योंकि इनमें पृथ्वी के स्रोतों का अनन्त शोषण कर असीमित आर्थिक प्रगति और मूलभूत परिवर्तनों की धारणा बनाई जाती है। जबकि 'पर्यावरण अध्ययन' आधुनिक जीवन शैली के प्रति बहुत हद तक आलोचक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस तरह वर्तमान

पहले तीर्थस्थल अब प्रदूषण. . . . .

हमारी शिक्षा व्यवस्था पर्यावरण के मुद्दों के प्रति हाल ही में सचेत हुई है... साठ के दशक में छपी पाठ्य पुस्तकों में धुंआ उगलते कारखाने के रेखाचित्रों के साथ शीर्षक होता था – 'आधुनिक भारत के तीर्थस्थल'। अब इसमें संशोधन कर दिया गया है और नया शीर्षक कहता है, 'प्रदूषण के स्रोत'। यद्यपि बच्चों को यह निहायत बुरी खबर साफ-साफ नहीं बताई जाती कि अब डी.डी.टी. से मच्छरों को नहीं मारा जा सकता ... फिर भी यह संदेश तो ज़ाहिर हो ही जाता है कि डी.डी.टी. बुरी चीज़ है। ... इसी तरह के कई नकारात्मक संदेश ... कुछ उलझे-बिखरे हुए पर फिर भी इशारा करते हुए – पर्यावरण अध्ययन की सामग्री में बिखरे हुए हैं, रासायनिक खादों पर, जीवाष्म संसाधनों से ली जा रही ऊर्जा पर, उपभोगपूर्ण जीवन शैली पर, उत्पादन के आधुनिक तरीकों पर। अगर हम ऐसे सब विषयों और उप-

शेष अगले पेज पर

विज्ञान पाठ्यक्रम बच्चों के सामने एक अस्पष्ट और दोहरे मानदण्डों के साथ रखा गया विषय है। *(देखिए **पहले तीर्थस्थल अब प्रदूषण**, पिछले पृष्ठ पर)*

अलग-अलग दुनिया

कृष्ण कुमार ने अंत में हमारे देश में अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से नव-उपनिवेशवाद के बढ़ते प्रभाव पर विचार किया है। पब्लिक स्कूलों का बढ़ता बोलबाला और सरकारी स्कूलों की चरमराती हालत – दोनों ने मिलकर समाज में ऐसा असंतुलन पैदा कर दिया है जिससे उबर पाना मुश्किल होता जा रहा है। क्योंकि जहां एक ओर अंग्रेज़ी में प्रवीणता हासिल कर लेने पर बच्चे समाज में विशेष प्रतिष्ठा और नौकरियों में अधिक स्थान पाने के अधिकारी हो जाते हैं वहीं दूसरी ओर अपनी मातृभाषा से कट जाने के कारण अपने आसपास के परिवेश, समाज और जीवन के साथ एकात्मता स्थापित नहीं कर पाते। फलतः उनका ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। दूसरी ओर सरकारी स्कूलों के छात्र, जो अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम के रूप में न पढ़कर एक विषय के रूप में पढ़ते हैं क्रमशः हीन भावना के शिकार होते जा रहे हैं। यही नहीं उन्हें उचित सामाजिक प्रतिष्ठा तथा नौकरियों में योग्यता के अनुसार अवसर भी नहीं मिल पाते। इस प्रकार देश की बौद्धिक क्षमता का अपव्यय कर ऐसा सांस्कृतिक परिवेश बनाया जा रहा हे जिसमें नव-उपनिवेशवाद के खिलाफ उठी आवाज़ प्रभावहीन हो जाती है।

इस प्रकार कृष्ण कुमार ने अपनी इस पुस्तक में बहुत अर्थपूर्ण मुद्दों को उठाया है और उनका मानना है कि वर्तमान सामाजिक-आर्थिक ढांचा ही

विषयों को जोड़ दें तो पता चलता है कि पर्यावरण अध्ययन पाठ्यक्रम आधुनिक जीवन शैली की एक व्यापक और गहरी आलोचना से कम नहीं है।

मनुष्य जब जानवरों का अध्ययन करता है तो जानवर उस हिंसा को कैसे झेलते हैं, उसकी किसी विज्ञान के पाठ में चर्चा नहीं होती। ... प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस के प्रयोग – जिनसे यह पता चला कि वनस्पतियों में प्रतिक्रिया करने की क्षमता होती है – हिन्दी की पाठ्य पुस्तक में स्थान पाते हैं, विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों में बिलकुल नहीं।

बच्चे जब दुनिया में सामंजस्य की तलाश करते हैं तब इन सीमाओं में पलती-पुसती वैज्ञानिक मानसिकता जिसकी इतनी चर्चा है, उनको कोई रास्ता नहीं दिखा पाती।

('लर्निंग फ्रॉम कॉन्फलिक्ट' का एक अंश)

शिक्षा को एक सार्थक सामाजिक प्रक्रिया न बनने देने का ज़िम्मेदार है। आशा है कृष्ण कुमार की नई रचनाएं हमारे विचारों के प्रवाह को इसी तरह आगे ले जाने में सहायक रहेंगी।

(नूतन झा – दिल्ली में रहती हैं।)

द्वंन्द्व की प्रस्तुति कैसे*.....

हमारे शिक्षा तंत्र में सामाजिक द्वन्द्व को स्वीकार करने में बड़ी हिचकिचाहट व्याप्त है। यह भी आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता कि चलिए सामयिक उदाहरणों को शांति व्यवस्था भंग होने की आशंका के चलते पढ़ाई में ज़्यादा तूल न दी जाए तो कम-से-कम ऐसे मामले जिनका कोई तात्कालिक महत्व नहीं है वे तो पाठ्यक्रम में उठाए जा सकते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण होगा ऐसी ऐतिहासिक घटना जो सामाजिक द्वन्द्व की पैदाईश हो और आज भी बच्चों की उत्सुकता और जिज्ञासा की पात्र हो। हाल की घटना न होकर पुरानी होने के कारण इसका विस्तृत और निष्पक्ष अध्ययन किया जा सकता है। महात्मा गांधी की हत्या एक ऐसी घटना है। इस तरह के अध्ययन के लिए शायद ही इससे बेहतर कोई उदाहरण अपने इतिहास से हमें मिले।

ऐसी शायद ही और कोई घटना होगी जिसके बारे में बच्चों की जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से जागृत होगी और वे उसकी तह तक जाना चाहेंगे। भारतीय इतिहास में गांधीजी की वृहद भूमिका और अहिंसा के सिद्धांत के अनुसार व्यवहार को देखते हुए एक हत्यारे के हाथों मारे जाने की बात बच्चों के लिए एक पहेली बन जाती है। बच्चे यह जानने को उत्सुक होते हैं कि एक ऐसा महान भारतीय जिसने शांति और प्रेम का संदेश दिया, उसे गोली से क्यों मारा गया।

शैक्षणिक दृष्टि से यह घटना ऐतिहासिक अध्ययन के लिए काफी उपयुक्त लगती है। गांधीजी की हत्या से संबंधित बच्चों की जिज्ञासा को शांत करने के लिए हमारे बच्चों को अपनी पाठ्य-पुस्तकों से क्या मदद मिलती है, देखते हैं।

"भारत के स्वतंत्र होने के कुछ ही दिनों बाद भारतीय जनता को एक महान विपत्ति का सामना करना पड़ा। गांधीजी ने भारतीय जनता

*लर्निंग फ्रॉम कॉन्फलिक्ट के प्रथम अध्याय प्रेज़ेन्टेशन ऑफ कान्फलिक्ट से अनुदित। पृष्ठ-7 से 15